आरएसएस की 'देशभक्ति' के शोर का सच

आज बात-बात पर देशभक्ति का प्रमाण-पत्र बाँटने वाले संघ-भाजपा गिरोह की असलियत जानने के लिए हमें एक बार स्वतन्त्रता आन्दोलन में इनकी करतूतों के इतिहास पर नजर डाल लेनी चाहिए।

स्वतन्त्रता आन्दोलन से विश्वासघात:

1925 में विजयदशमी के दिन अपनी स्थापना से लेकर 1947 तक संघ ने अंग्रेजों के खिलाफ चूँ तक नहीं किया। जब अंग्रेजों के खिलाफ देश की जनता लड़ रही थी तब संघी लोगों को लाठियाँ भाँजना सिखा रहे थे और वह भी अंग्रेजों के खिलाफ नहीं बल्कि अपने ही देशभाइयों के खिलाफ। आरएसएस के संस्थापक सरसंघचालक केशव बलिराम हेडगेवार, दूसरे सरसंघचालक एम- एस- गोलवलकर और हिन्दुत्व के प्रचारक विनायक दामोदर सावरकर ने आजादी की लड़ाई से लगातार अपने को दूर रखा। यही नहीं जब भगतसिंह और उनके साथी अंग्रेज सरकार से यह माँग कर रहे थे कि उन्हें फाँसी नहीं बल्कि गोली से उड़ा दिया जाये तब सावरकर अंग्रेजी हुकूमत को माफीनामे पर माफीनामे लिख रहे थे। जब देश में लाखों लोगों की चेतना में आजादी की लड़ाई में शरीक होने का विचार सबसे प्रमुख था, उस समय आरएसएस ने न तो स्वतंत्रता आन्दोलन में भागीदारी की और न ही भागीदारी करने की चाहत रखने वालों को ही प्रोत्साहित किया। संघ के कार्यकर्ता और भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी तो गोरी हुकूमत का विरोध करने वालों की मुखबिरी में शामिल थे। सोचने वाली बात है कि आज इन्हें लोगों को देशभक्ति के प्रमाणपत्र बाँटने का ठेका किसने दे दिया?

आरएसएस की आजादी के संघर्ष से विश्वासघात को समझने के लिए हम एक बार उसी के नेताओं के लेखन और भाषणों को देखें। असहयोग आन्दोलन (1920-21) भारत की आजादी में एक बड़ा आन्दोलन था जिसने एक बार देश की जनता की आजादी की चाह को मुखर अभिव्यक्ति दी लेकिन 'गुरूजी' के नाम से जाने जाने वाले सरसंघचालक गोलवलकर इस संघर्ष में शामिल नौजवानों के पक्ष की जगह कानून और व्यवस्था की चिंता जाहिर करते हैं। जैसे कोई अंग्रेज अधिकारी या शासक की चिन्ता हो। वह कहते हैं-

'संघर्ष के बुरे परिणाम हुआ ही करते हैं। 1920-21 के आन्दोलन (असहयोग आन्दोलन) के बाद लड़कों नें उद्दण्ड होना आरम्भ किया, यह नेताओं पर कीचड़ उछालने का प्रयास नहीं है। परन्तु संघर्ष के बाद उत्पन्न होने वाले ये अनिवार्य परिणाम हैं। बात इतनी ही है कि उन परिणामों को काबू में रखने के लिए हम ठीक व्यवस्था नहीं कर पाये। सन् 1942 के बाद तो कानून का विचार करने की आवश्यकता ही नहीं, ऐसा प्राय: लोग सोचने लगे'। ('श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-4,पृष्ठ 41,भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)

गोलवलकर के अनुसार 'संघर्ष के परिणाम बुरे' ही होते हैं। तो क्या भारतीय जनता आजादी के लिए संघर्ष नहीं करती? अपने ऊपर जुल्म ढाहने वाले कानूनों के प्रति भारतीय नौजवान चुप बैठते? उनका सम्मान करते? अंग्रेजों के कानून और व्यवस्था की चिन्ता करने वाले गोलवलकर कम से कम यही राय रखते हैं। गोलवलकर ने संघ की स्वतन्त्रता आन्दोलन से अलग रहने की नीति पर मुस्तैदी से अमल किया। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय भी उन्होनें यही रुख अपनाया:'1942 में भी अनेकों के मन में तीव्र आन्दोलन था। उस समय भी संघ का नित्य कार्य चलता रहा। प्रत्यक्ष रूप से संघ ने कुछ न करने का संकल्प किया। परंतु संघ के स्वयंसेवकों के मन में उथल-पुथल चल ही रही थी। संघ यह अकर्मण्य लोगों की संस्था है, इनकी बातों में कुछ अर्थ नहीं, ऐसा केवल बाहर के लोगों ने ही नहीं, कई अपने स्वयंसेवकों ने भी कहा। वे बड़े रुष्ट भी हुए।' ('श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-4, पृष्ठ 40, भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)

1942 के आन्दोलन के समय गोलवलकर संघ संचालक थे। जब देश की जनता का देशप्रेम, आजादी के संघर्ष में अपना सबकुछ बलिदान करने की तीव्र इच्छा थी। लोग गुलामी की जंजीरों को तोड़कर आजाद होने के लिए लड़ रहे थे तो संघ ने क्या किया? 'संघ ने कुछ न करने का संकल्प किया'। क्योंकि अंग्रेज भक्ति ही उनकी देशभक्ति थी। 9 मार्च 1960 को इंदौर, मध्यप्रदेश में आरएसएस के कार्यकर्ताओं की एक बैठक

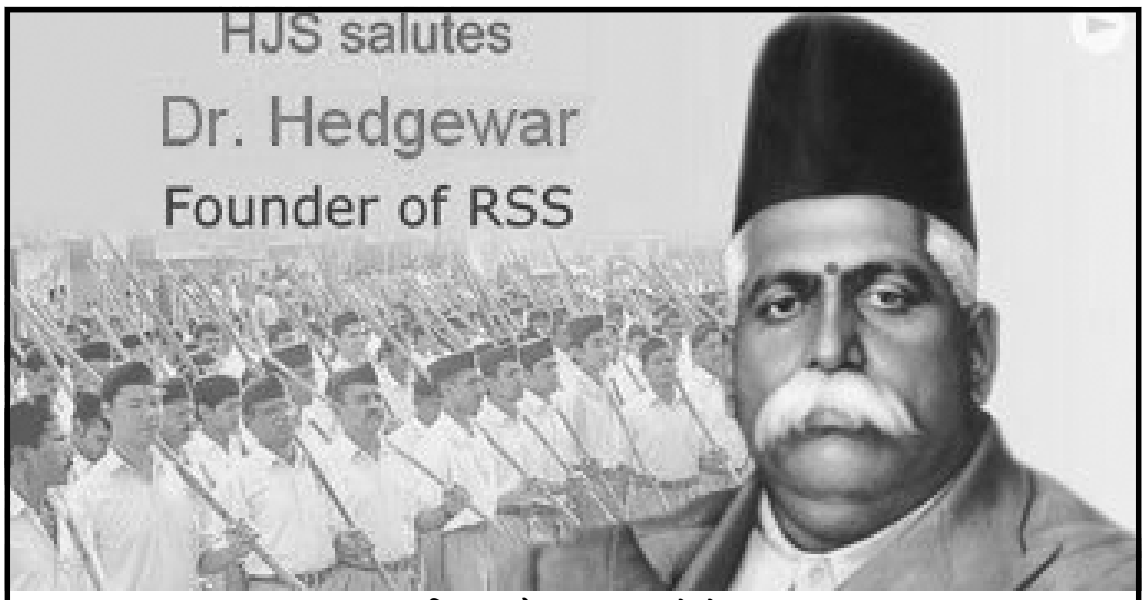

हिन्दू राष्ट्र के तलबगार डा. हेडगेवार

को सम्बोधित करते हुए गोलवलकर ने कहा: नित्यकर्म में सदैव संलग्न रहने के विचार की आवश्यकता का और भी एक कारण है। समय-समय पर देश में उत्पन्न परिस्थितियों के कारण मन में बहुत उथल-पुथल होती ही रहती है। सन् 1942 में ऐसी उथल-पुथल हुई थी। उसके पहले सन् 1930-31 में भी आन्दोलन हुआ था। उस समय कई लोग डाक्टर जी (हेडगेवार) के पास गये थे। इस 'शिष्टमंडल' ने डाक्टर जी से अनुरोध किया कि इस आन्दोलन से स्वातंर्त्य मिल जायेगा और संघ को पीछे नहीं रहना चाहिए। उस समय एक सज्जन ने जब डाक्टर जी से कहा कि वे जेल जाने के लिए तैयार हैं, तो डाक्टर जी ने कहा जरूर जाओ। लेकिन पीछे आपके परिवार को कौन चलायेगा ?'' उस सज्जन ने बताया- 'दो साल तक केवल परिवार चलाने के लिए ही नहीं तो आवश्यकता अनुसार जुर्माना भरने की भी पर्याप्त व्यवस्था उन्होंने कर रखी है।' तो डाक्टर जी ने कहा, 'आपने पूरी व्यवस्था कर रखी है तो अब दो साल के लिए संघ का ही कार्य करने के लिए निकलो।' घर जाने के बाद वह सज्जन न जेल गये न संघ का कार्य करने के लिए बाहर निकले।'' (श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-4, पृष्ठ 39-40, भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)

दरअसल आरएसएस के संस्थापक हेडगेवार, गोलवलकर या 'हिन्दुत्व' के प्रचारक इस गिरोह का कोई भी नेता हो उसने अंग्रेजों के खिलाफ आजादी की लड़ाई में एक ओर तो खुद भाग नहीं लिया वहीं दूसरी ओर उन्होंने आम भारतीय को भी जो इनके सम्पर्क में था अपनी तरफ से पूरी कोशिश की कि वह अंग्रेजों के खिलाफ स्वतन्त्रता आन्दोलन में शरीक न ही हो। हेडगेवार ने एक बार संघ की तरफ से नहीं परंतु व्यक्तिगत रूप से नमक सत्याग्रह में भाग लिया, लेकिन इसके बाद उन्होंने आजादी के लिए चल रहे किसी संघर्ष में भाग नहीं लिया। गोलवलकर अंग्रेज शासकों को विजेता मानते थे और उनकी दृष्टि में विजेताओं का विरोध न करके उनके साथ अपनापन रखना चाहिए।

एक बार एक प्रतिष्ठित वृद्ध सज्जन अपनी शाखा में आये। वह संघ के स्वयंसेवकों के लिए एक नूतन सन्देश लाये थे। उनको शाखा के स्वयं सेवकों के सम्मुख बोलने का अवसर दिया गया तो अत्यन्त ओजस्वी स्वर में वे बोले-'अब तो केवल एक काम करो। अंग्रेजों को पकड़ो और मार-मार कर निकाल बाहर करो। इसके पश्चात फिर देखा जायेगा।' इतना ही कहकर बैठ गए। इस विचारधारा के पीछे है- राज्यसत्ता के प्रति द्वेष तथा क्षोभ की भावना एवं द्वेषमूलक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति। आज की राजनैतिक भावविपन्नता का यही दुर्गुण है कि उसका आधार है प्रतिक्रिया, द्वेष तथा क्षोभ, और अपनापन छोड़कर विजेताओं का विरोध। ('श्री गुरूजी समग्र दर्शन', खंड-4, पृष्ठ 109-110, भारतीय विचार साधना, नागपुर, 1981)गोलवलकर की नजर में, जो कि आरएसएस के 'दार्शनिक- गुरू' की तरह माने जाते हैं, ब्रिटिश हुकूमत के प्रति भारतीय जनता के मन में द्वेष रखना ठीक नहीं है!! ये सज्जन न ही उनका विरोध करने को कहते हैं, तो क्या अपने ऊपर जोर-जुल्म करने वाली अंग्रेजी सत्ता से भारत की जनता प्यार करती, उन्हें गले लगाती?

आजादी के संघर्ष के दौरान जब आरएसएस ने लगातार लोगों को आजादी की लड़ाई से दूर रखने और खुद संघर्ष में भाग नहीं लेने का फैसला लिया उसी समय शहीद भगतसिंह और उनके साथी देश के नौजवानों से आजादी के लिए अलख जगाने और क्रान्ति का संदेश देश के हर कोने तक पहुँचाने की अपील कर रहे थे।

हिन्दुत्व के प्रचारक और आरएसएस के करीबी संघ-भाजपा गिरोह के पूज्य सावरकर अंगेजों को माफीनामे पर माफीनामे लिख रहे थे। भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने जेल से देश के नौजवानों के नाम यह संदेश भेजा जो 19 अक्टूबर 1929 को पंजाब छात्र संघ के दूसरे अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया जिसकी अध्यक्षता नेताजी सुभाष चन्द्र बोस कर रहे थे। उन्होंने नौजवानों से अपील की, नौजवानों को क्रान्ति का यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फैक्ट्री कारखानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आजादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा। ('भगतसिंह और उनके साथियों के उपलब्ध सम्पूर्ण दस्तावेज', सं- सत्यम, पृष्ठ- 359)

आज यही संघ-भाजपा गिरोह एक ओर लोगों को देशप्रेम का प्रमाणपत्र दे रहा है वहीं दूसरी ओर देश के सच्चे शहीदों के विचारों को जनता से दूर रखने की कोशिश कर रहा है और खुद को सबसे बड़ा 'राष्ट्रवादी' बता रहा है। देश की आम जनता इतनी मूर्ख नहीं है। देश के नौजवान इस संघ द्वारा बोले जाने वाले इस झूठ पर कभी भी यकीन नहीं करेंगे।

आजादी के शहीदों का अपमान:

आज देशभर में गाल बजाते हुए टी.वी. चौनलों पर उन्मादी बात करना, सभाओं में भड़काऊ भाषण देना आरएसएस और भाजपा का सबसे प्रिय काम हो गया है। देश की आम जनता की शिक्षा, चिकित्सा, आवास और महँगाई जैसे मुद्दों को छोड़, न जाने ये किस विकास का तोता रटन्त लगाते रहते हैं। **आज ये शहीद भगतसिंह का शहीदी दिवस और जन्मदिन तो मनाते हैं ताकि जनता की आँखों में धूल झोंक सकें। लेकिन क्या कभी सचमुच इन्होंने शहीदों का सम्मान किया है? क्या जब तमाम क्रान्तिकारी जेलों की कोठरियों में कोड़े खा रहे थे, देश की आजादी के लिए फाँसी का फन्दा चूम रहे थे, तो संघी बात बहादुरों ने एक बार भी उनका सम्मान किया, एक बार भी उनका साथ दिया? इसका स्पष्ट उत्तर है, नहीं! संघ का पूरा संगठन और सोच झूठ और कुत्साप्रचार का पुलिन्दा है। भगतसिंह, राजगुरू, अशफाक उल्ला, रामप्रसाद 'बिस्मिल' की जो शहादत आज भी देश के हर एक इंसान के लिए देशभक्ति का एक आदर्श है, देखिये गोलवलकर उसके बारे में क्या कहते हैं।**

'हमारी भारतीय संस्कृति को छोड़कर अन्य सब संस्कृतियों नें ऐसे बलिदान की उपासना की है तथा उसे आदर्श माना है और ऐसे सब बलिदानियों को राष्ट्रनायक के रूप में स्वीकार किया है परन्तु हमने भारतीय परम्परा में इस प्रकार के बलिदान को सर्वोच्च आदर्श नहीं माना है।' (गोलवलकर, 'विचार नवनीत', पृष्ठ- 280-281)

जिन शहीदों के बलिदान को अपने दिल में देश का हर बच्चा रखता हो उसे कमतर बताकर गोलवलकर किस भारतीय संस्कृति की बात कर रहे हैं। दरअसल आरएसएस और उसके नेताओं की संस्कृति है कट्टरता और नफरत फैलाना, लोगों को हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर बाँटना, नहीं तो जो क्रान्तिकारी जनता के दिलों को अन्याय से लड़ने के लिए प्रेरित करते हों उनके बारे में ऐसा सोचना क्या दिखाता है। गोलवलकर ने जहाँ अंग्रेज शासकों को 'विजेता' कहकर सम्मान से देखने की बात की वहीं उन्होंने क्रान्तिकारी शहीदों को असफल व्यक्तियों के रूप में देखा और उनके बलिदानों को महान नहीं कहा। शहादत की पूरी परम्परा की निन्दा करते हुए वे कहते हैं,'नि:संदेह ऐसे व्यक्ति जो अपने आपको बलिदान कर देते हैं, श्रेष्ठ व्यक्ति हैं और उनका जीवन दर्शन प्रमुखत: पौरुषपूर्ण है। वे सर्वसाधारण व्यक्तियों से, जो चुपचाप भाग्य के आगे समर्पण कर देते हैं और भयभीत और अकर्मण्य बने रहते हैं, बहुत ऊंचे हैं। फिर भी हमने ऐसे व्यक्तियों को समाज के सामने आदर्श के रूप में नहीं रखा है। हमने बलिदान को महानता का सर्वोच्च बिन्दु, जिसकी मनुष्य आकाँक्षा करे, नहीं माना है। क्योंकि वे अन्तत: अपना उद्देश्य प्राप्त करने में असफल हुए और असफलता का अर्थ है कि उनमें कोई गम्भीर त्रुटि थी।'(एम. एस. गोलवलकर, विचार नवनीत, जयपुर, 1988, पृष्ठ- 281)

गोलवलकर के लिए महान आदर्श है सावरकर जैसे लोग, जो अंग्रेजों के खिलाफ माफीनामा लिखते हैं और जनता में हिन्दू साम्प्रदायिकता का जहर घोलते हैं। जब अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लोग लड़ रहे थे तो सरकार लोगों को पकड़कर जेल में डाल देती थी। गोलियों से भून देती थी, फाँसी पर चढ़ा देती थी। उस समय अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ लड़ना साहस और जोखिम का काम नि:सन्देह था। और जिनके दिलों में देश के लिए प्यार था उन्होंने जीवन का जोखिम उठाया। लेकिन इन सब के प्रति आरएसएस तिरस्कार भाव रखता है। जेल जाना उसके लिए ठीक नहीं था और उस समय वह लोगों को लम्बा जीवन जीने का उपदेश दे रहा था। हेडगेवार की जीवनी के अनुसार।

'देशभक्ति का मतलब केवल जेल जाना नहीं है। इस तरह की दिखावटी देशभक्ति में बह जाना सही नहीं है। वे (हेडगेवार) अक्सर यह अपील किया करते थे कि वक्त आने पर देश के लिए मरने के लिए हमेशा तैयार रहने के साथ साथ देश की आजादी के लिए संगठन बनाते हुए जिन्दा रहने की इच्छा भी बहुत जरूरी है' (सी. पी. भिजकर, 'संघ वृक्ष का बीज: डॉ. केशव राव हेडगेवार', पृष्ठ-21, सुरुचि, दिल्ली, 1994)

और हेडगेवार तथा गोलवलकर का मतलब जिस संगठन से था वह था संघ जिसने आजादी की लड़ाई में भागीदारी से दूर रहते हुए जिन्दा रहने और माफीनामे लिखने में अपनी भूमिका निभायी। **माफ़ीनामे और मुखबिरी का इतिहास:**

आजादी के पूरे आन्दोलन में संघ के लोगों का इतिहास अंग्रेजों को माफीनामें देने और क्रान्तिकारियों की मुखबिरी करने का रहा है। जब आजादी के समय तमाम लोग अपनी जान की बाजी लगाकर लड़ रहे थे तब अंग्रेजों के मार से घबराये सावरकर (जिसको संघ वीर सावरकर कहता है!!?) अण्डमान की जेल से माफीनामे पर माफीनामे लिख रहे थे। जेल में रहते हुए सावरकर ने एक नहीं चार-चार माफीनामे लिखे। अण्डमान जेल में आने के बाद 30 अगस्त 1911 को सावरकर ने अपनी पहली दया याचिका लिखी जिसे खारिज कर दिया गया। सावरकर ने अपना दूसरा माफीनामा 14 नवंबर 1913 को लिखा। गवर्नर जनरल काउंसिल के गृह सदस्य को लिखे अपने माफीनामें में भारत की आजादी के आन्दोलन के सम्मान की तनिक भी परवाह न करते हुए अपने व्यक्तिगत जीवन के लिए वे ब्रिटिश हुकूमत के लिए कुछ भी करने को तैयार थे। उन्होंने कहा कि, 'यद्यपि जेल में मेरा व्यवहार हर समय असाधारण रूप से अच्छा था इसके बावजूद छह महीने के बाद भी मुझे जेल से बाहर नहीं भेजा गया जबकि अन्य अपराधियों को भेजा गया। जेल में आने के दिन से आज तक मैंने अपने व्यवहार को जितना सम्भव हो अच्छा बनाने का प्रयास किया। मैं सरकार की किसी भी तरह की क्षमता (ब्रिटिश सरकार) में सेवा करने के लिए तैयार हूँ जैसा भी वह चाहे। मेरे व्यवहार में ईमानदारी पूर्ण परिवर्तन हुआ है और मुझे आशा है की भविष्य में ऐसा ही होगा। मुझे आशा है कि सम्माननीय महोदय इन बातों को ध्यान में रखेंगे'

इसके बाद सावरकर ने 1917 में एक और माफीनामा भेजा था। 30 मार्च 1920 को सावरकर ने चौथा माफीनामा भेजा था जिसमें उसने कहा कि, ''न तो मुझे और न ही मेरे परिवार के किसी सदस्य को सरकार से कोई शिकायत है साथ ही मेरे परिवार के किसी सदस्य पर 1909 से अब तक कोई अभियोग ही चला है ''

साथ ही सावरकर ने अपनी गतिविधियों को जिनके कारण उन्हें जेल भेजा गया था अतीत की बात कहा और पूरी तरह से ब्रिटिश सरकार के कानून और संविधान के प्रति आस्था व्यक्त की। उन्होंने कहा कि:

'मेरा दृढ़ता से संविधान के साथ ही बने रहने का इरादा है जिसकी मांटेग्यु द्वारा जल्दी ही शुरूआत की गई है।'

सावरकर ने यहाँ तक कहा कि:

''अगर सरकार हमारी तरफ से कोई वायदा चाहती है तो मैं और मेरा भाई सरकार द्वारा तय किए गए किसी भी निश्चित और उचित समय तक किसी भी राजनीतिक गतिविधि में भाग न लेने के लिए प्रसन्नता से अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं।'

यह हैं संघ-भाजपा के वीर सावरकर जिन्होंने अपनी जिंदगी को बचाने के लिए किसी भी तरह के ब्रिटिश सत्ता विरोध में भाग लेने से मना कर दिया था।

अटल विहारी बाजपेयी ने जो संघ के कार्यकर्ता और भारत के प्रधानमंत्री थे एक बार कहा था कि उन्होंने सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग लिया था। लेकिन किस तरह से भाग लिया था, उस आन्दोलन में उनकी भूमिका क्या थी? इस पर वह कुछ नहीं बोले। दरअसल 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में उनकी भूमिका एक मुखबिर की थी।

दरअसल अगस्त 1942 में भुजरिया के मेले में (उत्तर प्रदेश) एक बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए थे और वहाँ कुछ नौजवानों द्वारा पुराने नायकों के गीत गाये गए और बटेश्वर वन विभाग के कार्यालय को ब्रिटिश सत्ता से मुक्त कराने का आह्वान किया गया था। यहाँ से मार्च करते हुए भीड़ ने बटेश्वर जाकर कार्यालय पर हमला कर दिया और तिरंगा फहरा दिया। इस जुलूस में अटल बिहारी वाजपेयी और उनके भाई प्रेम बिहारी भी शामिल थे। बटेश्वर की घटना के बाद कई अन्य लोगों के साथ अटल बिहारी को गिरफतार किया गया कोर्ट में अटल विहारी बाजपेयी ने घटना में शामिल कई लोगों के नाम बताए थे जो कि वह छिपा सकते थे। उन्होंने अपनी गवाही में कहा कि-

27 अगस्त 1942 को बटुकेश्वर में लगभग 2 बजे दिन में पुराने नायकों के गीत गाये गए। ककुआ लीलाधर और महुअन द्वारा गीत गाया गया और भाषण दिया गया और इन्होने लोगों को वन कानून तोड़ने के लिए उकसाया।

अटल बिहारी द्वारा यह आजादी की लड़ाई में उन दो लोगों के खिलाफ

शेष पेज छह पर